नवरचना NAVRACHNA

विषय विशेषज्ञों द्वारा समीक्षित समाजशास्त्रीय शोध पत्रिका

ISSN NO. 2454–2458

वर्ष 5 | अंक 1 व 2 | 2019

अनुक्रमणिका

शोध लेख

बिहार में जातीय संगठनों का सामाजिक इतिहास (1947–1975 ई0) 3
कुमार विवेक कान्त

नवसंचार माध्यमों का अवधारणात्मक पक्ष 11
देबांजना नाग

ग्राम–नगर अन्तःक्रिया एवं ग्रामीण गतिशीलता के उभरते आयाम 18
बबिता शर्मा

सांस्कृतिक गतिविधियों पर कोरोना का प्रभाव 25
श्रीपाल चौहान

परम्परागत मुस्लिम समाज की आर्थिक व्यवस्थाः फातमी काल के विशेष सन्दर्भ मे 30
रजिया परवीन

शारीरिक शिक्षा के सामाजिक आधारः समाज की आवश्यकता के तौर पर शारीरिक शिक्षा और खेल 36
ऋचा मिश्रा

गोंड रामायणीः जनजातीय रामायण का विवेचनात्मक अवलोकन 40
प्रकाश त्रिपाठी

पुस्तक समीक्षा 46

आई.एस.एस.एन. संख्या : 2454–2458
नवरचना NAVRACHNA
www.grefiglobal.org/journals/navrachna.2019
वर्ष 5, अंक 1–2, जून–दिसम्बर 2019, पृ. 3–10

बिहार में जातीय संगठनों का सामाजिक इतिहास (1947–1975 ई0)

कुमार विवेक कान्त*

1947 के पूर्व बिहार पूर्णरूपेण रूढ़िवादी परंपराओं एवं धार्मिक अन्धविश्वास में जकड़ा था ही आर्थिक रूप से भी काफी पिछड़ा था। जातिवादी कट्टरता इसकी सामाजिक संरचना की प्रमुख विशेषता थी। अतः अंतरजातीय खान–पान एवं विवाह निषिद्ध थे। बुकानन (Buchanan) के अनुसार निम्न जातियों के लोग भी अपनी–अपनी जातियों के नियमों से बंधे हुए थे। 19वीं सदी तथा 20वीं सदी के पूर्वाद्ध का बिहार अविकसित तो था ही तथा ढ़ेर सारी पाबन्दियों तथा परंपराओं से भी बंधा था।

बिहार में जातियों तथा उपजातियों की संख्या बहुतायात में होने के कारण सामाजिक स्तर पर विषमता का फैलना स्वाभाविक ही है। एक ओर जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, भूमिहार तथा कायस्थ उच्च श्रेणी में थे वही वैश्य यादव, कुर्मी तथा कोइरी निम्न जाति के प्रमुख थे। उल्लेखनीय है कि निम्न जाति के लोग सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से निम्न स्तर के थे। उनमें अधिकांश या तो भूमिहीन मजदूर थे या कुछ ने कारीगरी का धन्धा जीवन यापन के लिए अपना लिया था। इतना ही नहीं सांस्कृतिक रूप से भी वे पिछड़े थे।

19वीं सदी के चतुर्थांश से जातीय संगठनों की प्रचुरता राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तरों पर दृष्टिगोचर होने लगती है। एक ओर ब्राम्हण, राजपूत एवं कायस्थ जैसी उच्च जातियाँ अपना–अपना संगठन बनाने में लगी थी तो दूसरी ओर कुर्मी, यादव एवं वैश्य समाज के भी जातीय संगठन सामने आने लगे। 20वीं सदी के प्रारंभ में जातीय संगठनों की संख्या और चेतनागत विस्तार में वृद्धि हुई। यह जातीय संगठन राजनीतिक कार्यकलापों के मंच बन गए और इनके बुलेटिन भी प्रकाशित होने लगे। लखनऊ से कुर्मी समाचार, इलाहाबाद से कायस्थ समाचार जैसी पत्रिकाएं भी प्रकाशित होने लगीं। यह उल्लेखनीय है कि जातीय चेतना और संगठन का प्रसार उन्हीं जातियों में पहले हुआ जो औपनिवेशिक काल में शिक्षा के क्षेत्र में अधिक लाभान्वित हुए। शिक्षा प्रसार के अनुक्रम में ही मध्यवर्ती व पिछड़ी जातियों के जातीय संगठनों का निर्माण हुआ।

जातीय संगठनों में सर्वप्रथम 1894 ई0 में अखिल भारतीय कायस्थ महासभा की स्थानीय इकाई लखनऊ में स्थापित की गई (L. Carol, Kayastha Samachar-from a caste to the National Newspaper, IESHR (10), 1973)। इस महासभा ने करीब–करीब सभी शिक्षित कायस्थों

*कुमार विवेक कान्त समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–2

को अपनी ओर आकर्षित किया। 1887 में बिहार एवं उत्तर प्रदेश के कायस्थों नें कायस्थ महासभा की औपचारिक स्थापना कर लखनऊ में ही पहला अधिवेशन सम्पन्न कराया। इससे प्रेरित होकर भूमिहारों ने भी अपना जातीय संगठन बनाने का निर्णय लिया। 1899 में ही मैथिल ब्राह्मणों का भी संगठन बना तथा इसी वर्ष मुस्लिमों ने भी अपने संगठन बनाए।

बिहार में यादव जाति अकेलें सबसे बड़ी जाति है। आर्थिक रूप से इनकी स्थिति काफी सुदश्ढ़ है पर सामाजिक दृष्टिकोण से ये पिछड़े हैं। 1922 में अखिल भारतीय यादव महासभा अस्तित्व में आया तथा यह यादवों की विभिन्न उपजातियों को मिलाकर बनाई गई थी।

1912 ई0 में बिहार के शाहाबाद जिलें में सर्वाधिक आबादी वाली यादव जाति ने गोप जातीय महासभा की स्थापना की और अपनी जाति के सदस्यों को ब्राह्मण की तरह ही जनेउ धारण करने की सलाह दी। महासभा में यह निर्णय लिया गया कि यादवों का एक आधिकारिक इतिहास लिखा जाय। देवरिया (उत्तर प्रदेश) के रणजीत सिंह ने यदुवंश–प्रकाश नामक पुस्तक की रचना की। निम्न जातियों में दूसरी प्रमुख जाति थी कोइरी जिनका भी अपना संगठन था। इसके महासभा का प्रथम अधिवेषन 1912 में उत्तर प्रदेष के मीरजापुर में हुआ जिसका नाम था कुशवाहा क्षत्रिय महासभा। उस समय उसे कोइरी हितकारणी सभा के नाम से भी जाना जाता था तथा जिसके 21 सम्मेलन बिहार में हुए। 20वीं सदी के प्रारंभिक दो दशकों की गुप्तचर रिपोर्ट इस बात का प्रमाण है कि ग्रामीण स्तर पर दलित जातियाँ भी अपनी–अपनी सभायें करने लगीं, जिनमें जातीय एवं सामाजिक उत्थान की वकालत की जाने लगी। इसके साथ ही उच्च जातियों का विरोध भी सामने आता है। उच्च जातियाँ, मध्यवर्त्ती व पिछड़ी जातियों के संस्कृतिकरण के खिलाफ आवाज उठाने लगी। मध्यवर्ती जातियों के संगठन जनेउ पहनने और जमीन्दारों का बेगार नहीं करने का नारा दे रहे थे। स्वाभाविक था कि अपने हितों और विशेषाधिकार पर कुठाराघात देख उच्च जातियाँ तिलमिलाई। मध्यवर्त्ती जातियाँ आर्थिक रूप से थोड़ा सबल हो रही थी। सामाजिक मुक्ति और प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करना शुरू कर चुकी थी। नतीजा यह हुआ कि यादवों द्वारा जनेउ धारण के कार्य को कहीं–कहीं पर उच्च जाति के हिंसक विरोध का सामना करना पड़ा। 1920 के दशक में बिहार में मुंगेर एवं जानीपुर के निकट पठोढी गाँव में भूमिहार–यादव दंगे भड़क उठे। वास्तव में यादव, कुर्मी और कोइरी जातियों द्वारा चलाये गये संस्कृतिकरण आन्दोलन की जड़ में जमींदारों द्वारा किये जा रहे आर्थिक सामाजिक दमन से मुक्ति पाना ही मुख्य उद्देश्य था।

आधुनिक राजनीति में अपनी–अपनी प्रभावशाली भूमिका दर्ज कराने के लिए जो जाति गोलबंद हुई, उसने जातियों के निर्माण की ऐतिहासिक मिथकीय गाथा को ही नये सिरे से गढ़ना षुरू किया। उदाहरण स्वरूप पुराणों के मुताबिक निशाद पिता और चांडाल माता से चमारों की उत्पत्ति हुई, लेकिन चमार स्वयं अपने को 14वीं सदी के संत रामानंद के शिष्य रविदास से अपनी उत्पत्ति मानने लगे। यह गाथा भी प्रचारित की गई की चार ब्राह्मण भाईयों के सबसे कनिष्ट पुत्र ने जब एक डूबती हुई गाय को बचाने का प्रयास किया तो उनके पहुँचने के पूर्व ही गाय मर चुकी थी, चूँकि वह मृतक गाय के सम्पर्क में आ गया तो उसके अन्य तीन भाइयों ने उसे बिरादरी से अलग कर दिया और उसे चमार नाम से सम्बोधित किया।

जातीय उत्पत्ति से संबंधित अनेक मिथकीय गाथायें प्रचलित होने लगी जो जातीय चेतना के विस्तार और संगठन को अभिप्रमाणित करती है। शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी जातियों में ही सबसे पहले

राजनीतिक चेतना का प्रसार हुआ, स्वाभाविक रूप में राजनीतिक नेतृत्व भी उन्हीं के हाथ में रहा, लेकिन जैसे–जैसे मध्यवर्त्ती एवं निम्न जातियों के लोग शिक्षित होने लगे, उनमें भी राजनीतिक प्रतिस्पर्धा पनपने लगी जिसका प्रभाव तात्कालिक राजनीतिक संगठनों के प्रतिनिधित्व में परिलक्षित होता है। प्रारंभ में अखिल भारतीय काँग्रेस में ब्राह्मण एवं अन्य उच्च जातियों का वर्चस्व था। 1892 एवं 1909 के बीच काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में 40 प्रतिशत प्रतिनिधि ब्राह्मण जाति के थे। 1920 ई0 के बाद उच्च जाति की संख्या में लगभग 20 प्रतिशत की कमी देखने को मिलती है। गाँधी के राजनीति में प्रवेश के साथ ही काँग्रेस का आधार विस्तृत हुआ और समाज के विभिन्न तबकों के लोग राजनीति से जुड़े। बिहार राष्ट्रवादी आन्दोलन में किसानों की भागीदारी व्यापक हुई। साथ ही गाँधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में अभिनव प्रयोग किया। गाँधी के इस अभिनव प्रयोग के फलाफल भी सामने आये, विभिन्न तबकों के लोगों में राजनीति चेतना का प्रसार हुआ और वे जातीय संगठन बनाकर अपनी राजनीतिक जागरूकता को प्रकट करने लगे। राजनीतिक चेतना के प्रसार के साथ विभिन्न जातियों में राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता का भी विस्तार हुआ।

जमींदारों और आम किसानों के हितों में टकराहट शुरू हुआ। काँग्रेस ने उसे पाटने का प्रयास तो किया लेकिन अन्तर्विरोध बढ़ता गया। 20वीं सदी के पूर्वाध में जातीय सभाओं के निर्माण से सामाजिक स्तर को ऊँचा बनाने का प्रयास शुरू हुआ। निम्न जाति के संगठनों ने उन्हें उच्च जाति के स्तर के समकक्ष लाने की दिशा में सार्थक प्रयास किये। उन्होंने बेगारी न करने का निर्णय लेते हुए अपने उत्पादों को जमीन्दारों एवं साहुकारों को मुँह–मांगी कीमत पर बेचने तथा भू–स्वामित्व के लिए संघर्ष के निर्णयों से जातीय संघर्षों का मार्ग अधिक प्रशस्त किया। 1920 के दशक में ये जातीय संघर्ष बिहार के ग्रामीण इलाकों में फैले जिसमें पटना, मुंगेर और मुजफ्फरपुर जिले महत्वपूर्ण थे। बिहारशरीफ में यह संघर्ष मुस्लिम जमीन्दारों तथा यादवों के बीच हुआ क्योंकि यादवों ने उन्हें दूध बेचना बन्द कर दिया था। ब्राह्मण और भूमिहारों ने भी यादवों द्वारा समानता की बात उठाये जाने का विरोध किया। लेकिन हमारे अध्ययनकाल में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन जातीय संघर्षों के स्वरूप में परिवर्तन हुआ।

स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने काँग्रेस की विचारधारा से असंतुष्ट होकर बिहार प्रांतीय किसान सभा का गठन किया। जमींनदारों के प्रति अपनाई गई उदारवादी नीति के कारण बिहार प्रदेश काँग्रेस एवं बिहार किसान सभा के बीच मतभेद उभर कर सामने आने लगे। 1930 के दशक में स्वामी सहजानन्द के नेतृत्व में चलाये जा रहे किसान आन्दोलन को जयप्रकाश नारायण तथा आचार्य नरेन्द्र देव जैसे समाजवादी नेताओं का सक्रिय समर्थन प्राप्त हुआ। ऐसी स्थिति में जब 1937 ई0 में चुनावी राजनीति की शुरूआत हुई, तो बिहार प्रदेश काँग्रेस पार्टी ने फैजपुर अधिवेशन में किसानों के हितों में प्रस्तावित कार्यक्रम को अपने घोषणापत्र का आधार बनाया और चुनाव में आशातीत सफलता प्राप्त की। परन्तु बिहार के काँग्रेस मंत्रिमंडल ने छोटे जमींन्दारों एवं समृद्ध किसानों के गठबंधन को कायम रखने के लिए एक तटस्थ की भूमिका निभाना श्रेयस्कर समझा। फलस्वरूप किसान नेताओं ने काँग्रेस के द्वारा विश्वासघात के विरोध में एक व्यापक अभियान छेड़ा जिसमें अन्य शिक्षित दलित जाति समूह के लोग शामिल थे। चूँकि जमीन्दार अधिकांश उच्च जाति से आते थे और किसान निम्न जाति से अतएव उनमें सामाजिक तनाव बढ़ने लगा जिसने जातीय राजनीति को बढ़ावा देने का काम किया। इस प्रकार मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय जातियों में राजनीति में प्रसार के साथ–साथ व्याप्त सामाजिक

विषमता के विरोध में जातीय गोलबंदी की राजनीति आरंभ हुई। राष्ट्रवादी और किसान आन्दोलन दोनों ने समाज के बहुत बड़े तबके को सामाजिक विषमता के प्रश्न पर आमने–सामने खड़ा किया। यही कारण है कि 1930 के दशक में बिहार की राजनीति को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने सामाजिक शोषण के विरूद्ध संघर्ष के लिए मजदूर व किसानों की एकता की जोरदार वकालत (बुलेटिन ऑफ दी आल इंडिया किसान सभा) की। उनका मानना था कि शहरों में कार्यरत मिल मजदूरों का एक बड़ा हिस्सा उन्हीं ग्रामीण किसानों का था जो अपने गाँवों में शोषण से उबकर राहत के लिए शहरों में शरण लेते थे।

बिहार में किसान आन्दोलन के प्रणेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती थे, जिन्होंने 1914 में बलिया (उत्तर प्रदेश) में सम्पन्न हुई अखिल भारतीय भूमिहार ब्राह्मण महासभा में न केवल हिस्सा लिया वरन् दो अवसरों पर ओजस्वी भाषण देकर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। शीघ्र ही वे अपने समुदाय के एक महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट नेता बन गये। 1916 में उन्होंने भूमिहार ब्राह्मण परिचय नामक पुस्तक प्रकाशित की। उनकी अन्य पुस्तकों में *ब्राह्मण समाज की स्थिति एवं झूठी माया और मिथ्या* महत्वपूर्ण है।

स्वामी सहजानंद सरस्वती के प्रयास से विभिन्न निम्न तबकों में जागरूकता तो आई लेकिन राष्ट्रवादी आन्दोलन की धाराओं में ये अपनी अलग पहचान कायम करने में सफल नहीं हो सके। यह उल्लेख करना प्रासांगिक होगा कि आधुनिक भारतीय इतिहास में अभिजात्य एवं निम्न वर्ग के बीच द्वंद्वात्मक स्थिति को पाश्चात्य सामाजिक परिवेश में बाँधकर नहीं देखा जा सकता। राष्ट्रवादी राजनीति में व्यापकता के कारण अभिजात्य एवं निम्नवर्गीय राजनीति का मिलन बिन्दु उभर नहीं जाता था। जिस कारण जातीय राजनीति की अपनी स्वतंत्र पहचान नहीं बन सकी और वह भी मुख्य राजनीति के एक अंश के रूप में ही कार्यरत रही।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जातीय राजनीति प्रक्रिया में स्पष्ट बदलाव दिखने लगा। बिहार की राजनीति में जातियों ने एक विशिष्ट भूमिका निभाई है। उच्च जातियों के बीच राजनीतिक स्पर्धा ने ही अन्य जातियों को गोलबंद करने में अहम भूमिका निभाई। 1945–1963 के बीच ब्राह्मणों, राजपूतों तथा भूमिहारों ने काँग्रेस का नेतृत्व किया। इस नेतृत्व ने यह प्रयास किया कि यादव तथा कुर्मी सशक्त होकर न उभरें। इस प्रयास में वे सफल भी रहे। परन्तु कालान्तर में यादव तथा कुर्मी नेताओं ने अपनी क्षमता से अपने जातीय संगठनों को मजबूत बनाकर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने में सफलता प्राप्त की। 1967 ई0 के आम चुनाव में काँग्रेस की पराजय के बाद यादव, कुर्मी तथा कोइरी जातियों ने बिहार की राजनीति में अपना प्रमुख स्थान बनाया। इन तीनों जातियों के संगठनों ने पुराने त्रिवेणी संघ को पुनः जीवित कर दिया।

साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के दौरान काँग्रेस पार्टी का विश्वस्त जनाधार जातीय एवं सामाजिक द्वन्द्व पर काफी हद तक नियंत्रण कायम रखा लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद चुनावी राजनीति ने जातीय चेतना और संगठन दोनों को उभारा। चुनावी राजनीति में सफलता के सोपान के रूप में जातीय राजनीति प्रभावशाली भूमिका निभाने लगी। राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं प्रशासनिक पदों के लिए विभिन्न जातियों में प्रतिस्पर्द्धा का महत्वपूर्ण दौर 1952 ई0 के बाद आरंभ हो गया। जातीय अंतरद्वन्द्वता, जो अब तक एक अन्तरधारा के रूप में विराजमान थी वह मुख्य धारा के रूप में सामने आ गई। बिहार की राजनीति अगड़ी और पिछड़ी जातियों के दो संघर्षशील समूहों से प्रभावित होने लगी। पिछड़ी जाति के संगठनों ने परम्परागत ब्राह्मणवादी व्यवस्था में अग्रणी ब्राह्मण, भूमिहार,

राजपूत एवं कायस्थ जातियों के आधिपत्य को चुनौती देना आरम्भ किया। पिछड़ी जातियों में इस समूह का नेतृत्व मुख्यतः यादव, कुर्मी एवं कोइरी जातियों द्वारा किया जाने लगा। काँग्रेस पार्टी की आन्तरिक राजनीति भी जातिवाद से प्रभावित होने लगी। नये–नये जातीय समीकरण बनने लगे।

काँग्रेस की विरोधी पार्टी सोशलिस्ट पार्टी ने जातीय संघर्ष की आवाज बुलन्द की जिसकी अभिव्यक्ति 1967 ई0 में सुनायी पड़ती है :–

''सोशलिस्ट ने बांधी गॉठ, पिछड़ा पावे सौं में साठ''।

कालक्रम में यह आह्वान कार्यरूप लेने लगा। 1962 ई0 में बिहार मंत्रिमंडल में 58 प्रतिशत ऊँची जातियों का एवं 8 प्रतिशत पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व था। वह 1975 में क्रमश 40 प्रतिशत और 20 प्रतिशत हो गया। स्वतंत्रता के पश्चात् दो दशकों तक काँग्रेस पार्टी की सरकार रही पर जातीय दृष्टिकोण से यह भी अछूती नहीं रही। निम्न जातियाँ 1960 ई0 के बाद सशक्त रूप से बिहार की राजनीति में उभरी। 1967 का आम चुनाव इसे सम्पुष्ट करता है।

आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन की साम्राज्यवादी एवं राष्ट्रवादी, मार्क्सवाद और नव कैम्ब्रिज आदि के तहत जो लेखन हो रहा है उसमें जातीय राजनीति पर विश्वस्त बहस देखने को नहीं मिलती है। यह अलग बात है कि समाज सुधार आन्दोलन या राष्ट्रीय आन्दोलन की व्याख्या के क्रम में जातीय राजनीति की चर्चा प्रसंगवश देखने को मिलती है। रंजीत गुहा के नेतृत्व में इतिहास की जिस निम्नवर्गीय दृष्टि का विकास हुआ उसमें भी अधिकांश इतिहासकारों ने जातीय राजनीति को अपनी बहस का केन्द्र बिन्दु नहीं बनाया। निम्नवर्गीय इतिहासकारों ने शासक और शासित के बीच द्वन्द्व को आधार मानकर दंगा, विद्रोह, क्रांति एवं संगठित राजनीति आन्दोलन की रोमांचकारी घटना को ही अपनी बहस का मुद्दा बनाया। दैनिक जीवन में जो सामाजिक प्रतिरोध अभिव्यक्त होता है इसकी ओर ध्यान नहीं गया। यह रेखांकित करने योग्य है कि जातीय राजनीति की अभिव्यक्ति आन्दोलन एवं दैनिक प्रतिरोध दोनों रूप में होती है, हिंसक और अहिंसक दोनों रूपों में अनुगुंज सुनाई पड़ती है।

जातीय संगठन एवं जातीय राजनीति के प्रति इतिहासकारों की उदासीनता की अभावपूर्ति मानवशास्त्र के अध्ययन से होती है। जहाँ इतिहासकारों ने सामान्यतया जाति को अपने अध्ययनों में विशेष स्थान नहीं दिया है वहीं पर समाजशास्त्रीय अध्ययनों का केन्द्र बिन्दु जाति ही रही है। यद्यपि समाजशास्त्रीय अध्ययन की सबसे बड़ी सीमा है कि यह ऐतिहासिक क्रम में जातीय गतिशीलता को रेखांकित नहीं करता है। ऐतिहासिक संदर्भों से अलग कर देखने से न तो जातीय गतिशीलता को रेखांकित किया जा सकता है और न ही उसमें समय के साथ हो रहे परिवर्तन को।

राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने ऐतिहासिक शोध को राष्ट्रीय आन्दोलन की जरूरतों तक केन्द्रित रखा, जिस कारण यहाँ की क्षेत्रीय भिन्नतायें सामाजिक ऐतिहासिक अध्ययन से ओझल हो गईं। परन्तु 1930 के दशक में फ्रांस के एनाल्स स्कूल ने सामाजिक इतिहास की नई अवधारणा को स्थापित किया, जिसमें स्थानीय इतिहास को बल मिला। इनका मानना था कि क्षेत्रीय विशिष्टतायें ही मिलकर एक सम्पूर्ण इतिहास का निर्माण करती हैं। जो समाज को एक नई दिशा देती हैं। 1945–67 ई0 की अवधि में इतिहास की प्रवृत्ति सामाजिक अध्ययन से प्रभावित होने लगी। एनले और शोसल मुहमा नामक जर्नलों ने सामाजिक इतिहास की अवधारणा को प्रचारित किया। इतिहास और सामान्य विज्ञान के अन्य दूसरे विषयों के बीच अन्तर्संबंध ने भी इतिहास के सामाजिक दृष्टि को प्रखर बनाया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

बी0 निकोलस, डर्कस, 2003: कास्टस ऑफ माइन्ड : कोलोनियलिज्म एण्ड दि मेकिंग ऑफ मॉडर्न इंडिया, नई दिल्ली,

जी0ए0 ओडी, 1979: सोशल प्रोटेस्ट इन इंडिया, मनोहर, नई दिल्ली,

अल्फ्रेड नंदी, 1902: कास्ट एज ए फैक्टर इन इण्डियन पॉलिटिक्स, दि कायस्थ समाचार (अंग्रेजी), खण्ड–5, मार्च .

बनार्ड एस0 कौन्ट, 1980: हिस्ट्री एण्ड एन्थ्रोपोलोजी : दि स्टेट आफ प्ले,कम्पेरेटिव स्टडीज इन सोसाइटी एण्ड हिस्ट्री, खण्ड–22, .

पार्थ चटर्जी, 1980: नेशनलिस्ट थौट एण्ड कोलोनियल वर्ल्ड : ए डिराईवैटिव डिस्कोर्स, जेड बुक्स, लंदन,

आई0 लाइड एवं सुसेन रूडोल्फ,1967: दि मोडर्निटी एण्ड ट्रेडिशन : पोलिटिक्स डेवलपमेंट इन इंडिया, ओरियंट लोगमेन, नई दिल्ली.

लूसी कैरोल, कोलोनियल परसेप्शन्स ऑफ इंडियन सोसाईटी एण्ड दी इमरजेंस ऑफ कास्ट एसोसिएशन्स, जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज, पृ0– 233–235.

क्रिस्टोफ जैफरोलो, इन्डियाज साइलेंट रिवोल्यूशन : दि राइज ऑफ लो कास्ट इन नॉर्थ इंडियन पालिटिक्स, नई दिल्ली।

बिहार एण्ड उड़ीसा पुलिस एक्सट्रैक्ट ऑफ इनटेलिजेंष, 1913 खंण्ड–2.

हेतुकर झा, 1977: लोअरकास्ट पिजेंटस एण्ड अपरकास्ट जमीन्दार्स इन बिहार, 1921–1925 इन एनालासिस ऑफ संस्कृट्राइजेशन एण्ड कंट्राडिक्शन विटबीन टू ग्रूप्स, इंडियन इकोनोमी एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू खण्ड–14, .

के0के0 शर्मा एवं अन्य (सं0), 1994: पिजेंटस स्ट्रगल इन बिहार, पटना.

अरविन्द एन0 दास, 1983: एग्रेरियन अनरेस्ट एण्ड सोशियो इकोनोमिक चेंज 1900–1980, नई दिल्ली.

स्वामी सहजानन्द सरस्वती, 1982: मेरा जीवन संघर्ष, पटना.

एम0एन0 श्रीनिवास, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन।

के0एस0 सोलवंकर,1940: प्रोबलम ऑफ इंडिया,

जी0एस0 घुर्ये, 1932: कास्ट एण्ड रेस इन इंडिया.

सर, एच0एच0, रिजले, 1915: दि पिपुल्स ऑफ इंडिया.

ओ0 मेली (सम्पां), 1941: मोडर्न इंडिया एण्ड दि वेस्ट.

आर0पी0 दत्ता, 1939: राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ इंडियन नेशनलिज्म–.

आर0पी0 दत्त, इंडिया टूडे।

रोमिला थापर, 1976: जिनियोलोजी एज ए सोर्स ऑफ सोशल हिस्ट्री, दि इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू जनवरी .

डा0 राम मनोहर, लोहिया, 1970: इतिहास चक्र, इलाहाबाद.

रामबिलास शर्मा, 1952: स्वाधीनता आन्दोलन के बदलते परिप्रेक्ष्य, दिल्ली.

शाहीद आमीन और ज्ञानेन्द्र पांडेय (सम्पा), 1995: निम्नवर्गीय प्रसंग, नई दिल्ली.

एफ जानुजी, 1974: टेनशन, एग्रेरियन क्राईसिस इन इंडिया, दि केस ऑफ बिहार, नई दिल्ली.

आन्द्रे बेते, 1994: दि बेकवर्ड क्लासेस इन कंटेमपरटी इंडिया, दिल्ली.

इनायत अहमद, 1965: बिहार ए फिजिकल, इकोनोमिक एण्ड रिजन ज्योग्राफी रॉची,

राधाकृष्ण चौधरी, 1958: हिस्ट्री ऑफ बिहार, पटना.

विजय चन्द्र प्रसाद चौधरी, 1965: दि क्रियशन ऑफ मॉडर्न बिहार, पटना.

पी0सी0 राय चौधरी, 1962: इन साईड बिहार, कलकत्ता.

आर0आर0 दिवाकर (सम्पा0) 1973: बिहार थ्रू दी एजेज, बम्बई.

आर0एल0 चन्द्रापुरी, 1949: बैकवर्ड क्लासेज मुवमेंट इट्स स्पोंनसरर एण्ड विल्डर, पटना.

पार्थ चटर्जी, 1986: नेशनल थॉट एण्ड कोलोनियल वर्ल्ड : ए डिराइवेटिव डिस्कोर्स, लंदन.

के0के0 दत्ता, 1957: हिस्ट्री ऑफ दी फ्रीडम मुवमेंट इन बिहार, 1875–1928, पटना.

ए0आर0 देसाई, 1979: पीजेंट स्ट्रगल्स इन इंडिया, बम्बई.

लूई ड्यूमो 1974: होमो–हायरआर्किकस: दी कास्ट सिस्टम एण्ड इटस इम्पलीकेशन्स शिकागो.

डी0 एन0 धनांग्रे, 1983: पिजेंटस मुवमेंट इन इंडिया, दिल्ली.

वाल्टर हाउजर, 1961: बिहार प्रोविनशियल किसान सभा, 1929–1942, ए स्टडी ऑफ इन इंडियन पिजेंटस मुवमेंट, शिकागों,

रजनी कोठारी, 1986: कास्ट इन इंडियन पोलटिक्स, नई दिल्ली.

एम0एस0ए0 राव, 1978–1979: सोशल मुवमेंट इन इंडिया, खण्ड–1 एवं 2 नई दिल्ली

जनगणना रिपोर्ट, 1951 से 1981 तक।

सी0आई0डी0 रिपोर्ट्स।

गृह विभाग, विशेष शाखा की ए0 और बी0 फाईट्स।

पत्र–पत्रिकायें :

बिहार बंधु, पटना।

कायस्थ समाचार, इलाहाबाद।

बिहार टाईम्स पटना।

मिथिला मिहिर, दरभंगा।

जनता, पटना।

अमृत बाजार पत्रिका कलकत्ता।

दि इंडियन नेशन, पटना।
दि सर्चलाईट, पटना।
दि बिहार हेराल्ड, पटना।
हुँकार, पटना।
प्रदीप, पटना।
जनशक्ति, पटना।
किरण बुलेटीन, बम्बई।